तृतीय अध्याय

योग साधना एवं विभिन्न पद्धतियाँ

1. योग की साधना
2. योग की सहज साधना
3. योग उपासना की विभिन्न पद्धतियाँ
4. योग से आत्मस्वरूप का बोध

तृतीय अध्याय

योग साधना एवं विभिन्न पद्धतियाँ

योग के पथ पर अग्रसर होने के लिए शास्त्रों में आचार संबंधी यम–नियम तथा अन्य तकनीकियाँ वर्णित हैं। पातञ्जल योगदर्शन, भगवद्गीता तथा अन्य योगशास्त्रों ने स्वीकार किया है कि योगपथ पर अग्रसर होने के दो प्रमुख उपाय है।

अभ्यासवैराग्यभाभ्याम् तन्निरोधः

अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते।

1. अभ्यास[1] 2. वैराग्य[2] । पतञ्जलि ने चित्त की वृत्तियों का सर्वथा निरोध करने के लिए अभ्यास और वैराग्य ये दो उपाय कहे हैं। चित्तवृत्तियों का प्रवाह परम्परागत संस्कारों के बल से सांसारिक भोगों की ओर चलता रहता है। उस प्रवाह को रोकने का उपाय वैराग्य है और उसे कल्याण मार्ग में ले जाने का उपाय अभ्यास[3] है।

तत्र स्थितो यत्नोऽभ्यासः

जो स्वभाव से ही चंचल है, ऐसे मन को किसी एक ध्येय में स्थिर करने के लिए बार–बार चेष्टा करने का नाम अभ्यास है।

---

[1] योग.सू. 1/12

[2] योग.सू 2/1

[3] योग.सू 2/29

1. योग की साधना :

प्राचीन ऋषि–महर्षियों ने जो धर्म मानव–जाति के कल्याण के लिए प्रकाशित किया उसमें योगसाधना को प्रधान स्थान प्राप्त है। यदि मानवधर्म से योग साधना को पूर्णतया हटा दिया जाए तो उसमें कुछ भी नहीं बचेगा। भारतीय ऋषियों ने योग का मानव–जीवन के साथ अटूट संबध देखकर मनुष्य को योगमय जीवन व्यतीत करने की प्रेरणा दी। वेद, शास्त्र, उपनिषद, पुराण, गीता आदि धर्मग्रन्थ सभी योग की साधना के ही चमत्कार हैं। ऋषियों ने आत्मकल्याण और लोककल्याण के सन्मार्ग का अनुसंधान समाधिस्थ अवस्था में योगारूढ़ होकर ही किया था। वेदों में कर्म, उपासना और ज्ञान के नाम से योग का ही वर्णन किया गया है। पातञ्जल योगदर्शन में योग की साधना पर ही विचार किया गया है, कपिलमुनि के सांख्य दर्शन में सांख्य योग की महत्ता बतलायी गयी है, पूर्वमीमांसा में कर्म योग की व्याख्या है और उत्तरमीमांसा में ब्रह्मयोग की चर्चा है। श्रीमद्भगवद्गीता का प्रत्येक अध्याय तो योग साधना की ही चर्चा विभिन्न रूपों में करता है। अतः योगधर्म ही मनुष्यों के लौकिक और पारलौकिक कल्याण तथा मुक्तिमार्ग का एकमात्र पथ है। योग की साधना के द्वारा चित्त की एकाग्रता प्राप्त हो जाने पर परमज्ञान उत्पन्न होता है और उसी ज्ञान के प्रकाश में जीवात्मा कर्मबन्धन का उच्छेद करके मुक्ति प्राप्त कर लेता है।[4]

"अभ्यास वैराग्ये हि योगोपायौ प्रथमे पादे उक्तौ न च
तौ व्युत्थितस्य द्रागित्येवसम्भवत इति द्वितीय पादोपदेस्याऽनु
पायानपेक्षते सत्वशुद्धयर्थम् [5]

आर्यशास्त्रों में भक्ति को उपासना का प्राण और योग को उपासना का शरीर कहा है। जिस प्रकार बिना प्राण के शरीर रह नहीं सकता, उसी प्रकार बिना भक्ति के

[4] त.वै.पृ.137
[5] वृहदआरण्यक उपनिषद, 3/7

उपासना नहीं हो सकती। शरीर के बिना जिस तरह शरीरी आत्मा का भोग असम्भव है उसी प्राकर योग की शैली के बिना उपासना का कोई साधन बन ही नहीं सकता। आवरण, विक्षेप आदि भावों से अन्तः करण के युक्त रहने से परमात्मा का स्वरूप प्रकट नहीं हो सकता, इस कारण सर्वव्यापी परमात्मा जीव के अन्तःकरण में विराजमान रहने पर भी उससे दूर हो जाते हैं, अर्थात् अन्तः करणरूप जलाशय सदसद्वृत्तियों से तरङगयित और आलोकित रहने के कारण परमात्मा रूपी सूर्य का यथार्थ स्वरूप उस जलाशय में दिखाई नहीं पड़ता।

सदसदवृत्तिभ्याम् तरंगयितः न भाषते भानुं[6]

संसार के अन्य विज्ञानों को भाँति योग की साधना भी एक व्यवस्थित विज्ञान है। यह साधना का विज्ञान मन का विश्लेषण तथा अतीन्द्रिय जगत के तथ्यों का संकलन करता है और इस प्रकार आध्यात्मिक जगत का निर्माता है। संसार के सभी महान उपदेष्टाओं ने कहा है, ''हमने देखा और जाना'' यह देखना और जानना योग की साधना का ही परिणाम है।

''वयम् दृष्टा ज्ञाताः च''[7]
मन की एकाग्रता ही समस्त ज्ञान का उत्स है।
'' मनस्य एकाग्रता एव उत्सः ज्ञानः''[8]

योग की साधना हमें जड़ तत्व से ऊपर उठने की शिक्षा देती है। योग की साधना आत्मा को सर्वप्रथम स्व का परिचय स्वयं के लिए देती है। तद्पश्चात् चेतना को महाचेतना के साथ जोड़ने की विधि का निर्दर्शन करती है। श्रद्धाभाव से योग की साधना करने से मन के स्तर एक के बाद एक खुलते जाते हैं। और प्रत्येक स्तर पर

[6] योगवार्तिक, 14
[7] आत्मपूजोपनिषद पृ. 40
[8] प्रज्ञापुराण पृ. 264

नए–नए तथ्यों का प्रकाशन होता है इस दौरान साधक के समक्ष नई–नई शक्तियाँ प्रकट होती हैं, इन शक्तियों को देखकर योग की साधना करने वाले साधकों को रुक नहीं जाना चाहिए बल्कि आगे बढ़कर खजाने तक पहुचंना चाहिए।

योग की साधना का मूलाधार अष्टांग योग है, जिसको यथावत आचरण में उतारने से कोई मनुष्य चाहे वह किसी भी देश, जाति या संप्रदाय में पैदा हुआ हो वह योगी बन सकता है और ओंकार के खजाने को प्राप्त कर सकता है।

इस योग साधना का नाम अष्टांग योग है, क्योंकि इसको प्रधान रूप से आठ भागों में विभक्त किया गया है।[9]

यमनियमासनप्राणायाम प्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोऽष्टावङ्गानि

यम यह सर्वाधिक महत्वपूर्ण है और योग की साधना करने वाले साधक का संपूर्ण जीवन इसके द्वारा अनुशासित होना चाहिए। जिसको पाँच भागों में विभक्त किया गया है।[10]

अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः

1. मन, कर्म, वचन से हिंसा न करना।
2. मन, कर्म, वचन से सत्य का पालन करना।
3. मन, कर्म, वचन से लोभ न करना।
4. मन, कर्म, वचन से इन्द्रिय निग्रह करना।
5. मन, कर्म, वचन से आवश्यकता से अधिक वस्तुओं एवं विचारों का संग्रह न करना।

---

[9] यो.सू. 2/28
[10] यो.सू. 2/30

शौचसंतोषतपःस्वाध्यायेश्रवरप्रणिधानानि नियमः

नियम–योग की साधना में द्वितीय महत्वपूर्ण अंग नियम है, जिसको पांच भागों मे परिभाषित किया गया है।

1. **शौचः** शरीर, वस्त्र एवं स्थान की शुचिता रखना।
2. **संतोष**– पूर्ण पुरूषार्थ करने के बाद प्राप्त फल से संतुष्ट होना।
3. **तप**–द्वन्द्वों को सहन करना। जैसे सर्दी–गर्मी, भूख–प्यास, मान–अपमान इत्यादि सुख–दुःख, हानि–लाभ को सहन करना।
4. **स्वाध्याय–** स्व का अध्ययन करना अथवा आत्मा की ओर प्रेरित करने वाले साहित्य को पढ़ने–पढ़ाने एवं सुनने–सुनाने का अभ्यास करना।
5. **ईश्वरप्रणिधान–**ईश्वर तुम मुझे, देख, सुन और जान रहे हो ऐसा मानकर कर्म करना और प्रणव (ओम्) का यथोचित जाप करना।

3\. **आसन**– जिस अवस्था में स्थिर हो सके और दीर्घ काल तक साधक बैठ सके।

स्थिरसुखमासनम्[11]

4\. **प्राणायाम**– इस अवस्था में श्वास –प्रश्वास की गति को नियंत्रित किया जाता है।

तस्मिन् सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः[12]

---

[11] यो.सू.2 / 46
[12] प.यो 2 / 49

5. **प्रत्याहार**– इन्द्रियों को स्वविषयों से हटाकर चित्त की ओर स्वाभाविक रूप से मोडना।

स्वविषयासम्प्रयोगे चित्तस्य स्वरूपानुकार इवेन्द्रियायणां प्रत्याहारः[13]

6. धारणा– योग साधना के दौरान मन को स्थान तथा विषय विशेष पर केन्द्रित करना।

"देशबन्धश्चित्तस्य धारणा।[14]

7. ध्यान– मन को इन्द्रियों के समस्त विषयों से अलग कर देना।

तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्[15]

8. समाधि– समाधि रूपी ज्ञानालोक हमारी समस्त साधना का लक्ष्य है।

तदेवार्थमात्रनिर्भासम् स्वरूपशून्यमिव समाधिः[16]

उपरोक्त अष्टांग योग पतञजलि की मौलिक रचना है, जो त्रिकाल अबाधित है। इन्हीं अष्टांग योग के अंगों को पृथ्वी के विभिन्न स्थानों पर विभिन्न योगियों ने इन्हीं अर्थों में विभिन्न नामों से संबोधित किया है। योग साधना और तपश्चर्या प्रत्येक मनुष्य की आध्यात्मिक आवश्यकता है। उसका नित्य नियम में उसी प्रकार समावेश रहना चाहिए जैसा कि आहार और निद्रा का नित्य दैनिक जीवन में सुनिश्चित स्थान रहता है। मन को परिष्कृत करना ही योग की साधना है और शरीर को अनुशासित करने की क्रिया तप कहलाती है।

---

[13] प्रत्याहार 2/54

[14] पा.यो.सू. 3/1

[15] 2 वही

[16] पा.यो.सू.वही

योग की साधना के सन्दर्भ में एक बड़ी भ्रान्ति यह है कि यह सब घर छोड़नेवाले बाल बच्चों को त्यागने वाले जंगलों में रहने वाले, जटा जूट धारण करने वाले लाल–पीले वस्त्र पहनने वाले लोग ही योग की साधना कर सकते हैं।

सामान्य गृहस्थ जीवन के साथ भी व्यक्ति योग की साधना कर सकते हैं और उससे पूर्ण रूप से लाभान्वित हो सकते हैं।[17] योग की साधना के संबंध में न्यायदर्शन में कहा गया है कि –

कामं कामयमानस्य यदा कामः समृध्यते।[18]
अथैनमपरः कामः क्षिप्रमेव प्रबाधते।।

कामनाओं पर कामनाओं को करने वाले की एक कामना पूर्ण होती है पुनः दूसरी उत्पन्न हो जाती है। इस प्रकार व्यक्ति एक–एक की पूर्ति करते करते परेशान हो जाता है।

इसी संदर्भ में मनु का कथन भी प्रासंगिक है–

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्द्धते।।[19]

अर्थात् कामनाएं उपभोग से शान्त नहीं होती बल्कि अग्नि में घी की आहुति देने के समान बढ़ती ही जाती है। यदि चित्त की वृत्तियों को योग की साधना के द्वारा अंतर्मुखी नहीं किया गया तो स्थति कुछ इस प्रकार हो सकती है–

यत्पृथित्यां ब्रीहियवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः।[20]
एकस्यापि न पर्याप्तं तस्मात्तृष्णां परित्यजेत्।।

---

[17] शोधार्थी काअभिमत
[18] न्याय. द.वा.भा. 4/1/57
[19] मनु. आचार प्रकरण श्लो. 24
[20] महा. अदि. पर्व.अ.85 श्लो. 13

धरती पर जितने अन्न, धन, पशु, स्त्री आदि हैं, सब मिलकर भी एक व्यक्ति की तृष्णा को शान्त करने में पर्याप्त नहीं हैं। अतः उसके संग्रह विशेष की कामना ही छोड़ देनी चाहिए।

यह योग की साधना अज्ञानी, प्रमादी धनादि के लोभ से ग्रसित व्यक्ति को आत्मा–परमात्मा की बाते अच्छी नहीं लगती। दूसरी ओर यह सत्य है कि ज्ञानविज्ञान से युक्त, परिपक्व, अनुभवी, ईश्वर को सर्वस्व मानकर चलने वाले सर्वात्मना समर्पित योगियों के जीवन में कोई क्लेश, बाधा नहीं होती वे सर्वथा आनन्दित होते रहते हैं। बौद्ध परम्परा में विकारों से मुक्ति के लिए विपश्यना का सूत्र दिया गया है और जैन परम्परा में प्रेक्षाध्यान का। इन पद्धतियों के अनुसार कहा जाता है कि– मन में विकार के उभरने पर उसके दो परिणाम सामने आते हैं श्वास की गति में अस्वाभाविकता का उत्पन्न होना और स्थूल शरीर में जैव रासायनिक प्रतिक्रियाओं का प्रारम्भ होना। यदि इन दोनों परिणामों पर ध्यान केन्द्रित किया जाए तो परोक्ष रूप में मन के विकारों को देखने का ही कार्य प्रारम्भ हो जाता है। ठीक यही दोनों प्रक्रियाएं योग की सहज साधना में की जाती हैं। योग की सहज साधना अपने को अपने में देखने की एक नैसर्गिक क्रिया है। जिसमें साधक को कुछ भी साधना नहीं पड़ता है। केवल साक्षी भाव से देखना होता है। हम ऋषियों को आत्म–दृष्टा कहते हैं, क्योंकि वे साक्षी भाव से देखते थे। उपनिषद के ऋषियों की समस्त साधनाए योग की सहज साधना की ओर इंगित करती हैं।

2. योग की सहज साधना :

योग की सहज साधना से तात्पर्य है कोई भी व्यक्ति सहज और सरल तरीके से योग की साधना को किस प्रकार करके अपने जीवन को सुखी, संतुष्ट, प्रसन्न, आनंदित, निरोग और निर्भय बना सकता है।

किसी भी साधक को योग की सहज साधना को अपने जीवन का अंग बनाने के लिए सर्वप्रथम योग की मूलभूत बातों पर ध्यान देना होगा। जैसे अपने दैनिक जीवन में यम–नियम का मनसा, वाचा, कर्मणा से पालन करना। योग की साधना हमारे जीवन का ही एक अभिन्न हिस्सा है जिसे नैसर्गिक रूप से हम जीवन में जोड़कर योग से लाभान्वित होकर मानव से महामानव और पदार्थ से छूटकर परमात्मा को उपलब्ध हो सकते हैं।

पराञ्चि खानि व्यतृणत्स्वम्भूस्तस्मात्पराङ. पश्यति न नान्तरात्मन्।
कश्चिद्धीरः प्रत्यगात्मानमैक्षदावृत्तचक्षुरमृतत्वमिच्छन्।।[21]

जैसे कोई किसी झाड़ को समाप्त करने के लिए केवल उसके पत्ते–पत्ते या शाखा आदि को काटता रहे तो कब तक ऐसा करता रहेगा। झाड़ तो उगते ही रहेंगे। उसे तो मूल से उखाड़ना होगा।

जब तक ये भावना दृढ़ नहीं हो जाती कि अपने आप ही हमें उत्थान करना पड़ेगा स्वयं ही अपने स्थित दोषों को दूर करना पड़ेगा, तब तक उन संस्कारों की मार से बच नहीं सकते। इन दोनों को लम्बे समय में अभ्यास तथा वैराग्य द्वारा ही हटाया जा सकता है। सामान्य व्यक्ति सुन्दर रूप को देखकर बार बार सुख अनुभव करता है, उसे पाने की इच्छा करता है, तथा अप्राप्ति पर दुःखी हो जाता है। अनेक

[21] कठो. 4/1

बार मिथ्या ज्ञान से भी सुखी दुःखी होता है। योग की सहज साधना इन दोनों से पृथकता सिखाती है।[22]

योग की साधना मन को वश में रखना सिखाती है। गीता में भी कहा गया है कि –

असंयतात्मना योगो दुष्प्राप इति मे मतिः।
वश्यात्मनातु यतता शक्योऽवाप्तुमुपायतः।।[23]

अर्थात् जिनका मन वश में नहीं है, उनके लिए योग को प्राप्त करना अत्यन्त कठिन है, यह मेरा मत है, परंतु मन को वश में किये हुए प्रयत्नशील पुरूष योग की साधना द्वारा योग को प्राप्त कर लेते हैं।

दुःखों की आत्यन्तिक निवृत्ति और आनंदमय परमात्मा की प्राप्ति चाहने वाले को मन वश में करना ही पड़ेगा, इसके सिवा और कोई उपाय नहीं है। परंतु मन स्वभाव से ही बड़ा चंचल और वलवान है, इसे वश में करना कोई साधारण बात नहीं है। सारी साधनाएं इसी को वश में करने के लिए की जाती हैं। आदि गुरू शंकराचार्य ने कहा है कि –

'जितं जगत् केन मनो हि येन'[24]

अर्थात् जगत को किसने जीता ? जिसने मन को जीता। अर्जुन भी मन को कठिन समझकर उसको वश में करने का भगवान से उपाय पूछता है।

हे भगवन् । यह मन बड़ा ही चंचल, हठीला, दृढ़ और बलवान् है, इसे रोकना तो वायु के रोकने के समान अत्यंत दुष्कर समझता हूँ।[25]

---

[22] आत्मैव ह्ययाप्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः गीता 6/5
[23] गीता 6/36
[24] वि.चू.म. 3/1
[25] श्रीमद्भगवद्गीता 6/34

मन क्या पदार्थ है ? यह आत्मा और अनात्म–पदार्थ के बीच में रहने वाली एक विलक्षण वस्तु है। यह स्वयं अनात्म और जड़ है, किन्तु जीव काबन्ध और मोक्ष इसी के अधीन है।[26]

अभ्यास और वैराग्य से चित्त का निरोध होता है, इसलिए अभ्यास और वैराग्य के द्वारा कोई भी व्यक्ति मन को वश में करने का प्रयत्न कर सकता है।

''अभ्यास वैराग्याभ्याम् तन्निरोधः[27]

बौद्धिक रूप से परिपक्व व्यक्ति मन को वैराग्य रूपी रंजक में कैसे रंजित करें? मन में सदा विरक्ति के भाव रखने से संसार में नीरसता दिखाई देने लग सकती है वस्तुतः ऐसा नहीं है बल्कि मन को यथार्थ रूप से नियंत्रण में रखना ही सही अर्थो में वैराग्य है प्राचीन आचार्यो ने मन को तृष्णा रहित रखना वैराग्य माना है।

इन्द्रियार्थेषु वैराग्यमनहङ्कार एव च।[28]

एक तत्वस्य अभ्यास –

साधना में उन्नति करने के लिए महर्षि पतञ्लि कहते हैं कि शास्त्रनिर्दिष्ट अभिमत एकतत्व का अभ्यास करना चाहिए जिससे चित्त का विक्षेप दूर हो जाता है।

तत्प्रतिषेधार्थ मेकतत्वाभ्यासः।[29]

प्रतिदिन किसी वस्तु विशेष पर चित्त को एकाग्र करने से मन की चञ्चलता दूर होने लगती है।

दृष्टिः स्थिरा यत्र विनावलोकनम्।[30]

---

[26] मनु. स्मृ. 6/11
[27] यो.सू. समधि पदा 12
[28] भ..गी.13/8
[29] पा.यो. सू. 32

सुखी मनुष्यों से प्रेम, दुखियों के प्रति दया, पुण्यात्माओं के प्रति प्रसन्नता और पापियों के प्रति उदासीनता की भावना से चित्त प्रसन्न होता है।

मैत्रीकरूणा मुदितोपेक्षाणां सुःखदुःखपुण्यापुण्य विषयाणां भावनात् चित्तप्रसादनम्।।[31]

प्राणायाम के द्वारा योग की साधना–

प्राणायाम के द्वारा भी मन की एकाग्रता का सम्पादन किया जाता है। नासिका के छेदों से अन्तर की वायु को बाहर निकालना प्रच्छर्दन कहलाता है और प्राणवायु की गति रोक देने को विधारण कहते हैं। इन दोनों उपायों से भी चित्त स्थिर होता है।

प्रच्छर्दनविधारणाभ्याम् वा प्राणस्य।[32]

मन की एक सामान्य गति है लौकिक पदार्थो में सर्वदा भ्रमण करते रहना। परन्तु मन की एक विशिष्ट गति होती है जो यम, नियम, प्राणायाम आदि के द्वारा उसे वश में रखती है और यह स्थिति आत्मज्ञान में प्रयत्नभूत इन पदार्थो के द्वारा आविर्भूत होती है। ऐसी गति सम्पन्न मन को ब्रह्म के साथ संयुक्त करने की जो विधि है वह योग की साधना के नाम से जानी जाती है।

आत्मप्रयत्न सापेक्षा विशिष्टा या मनोगतिः।
तस्या ब्रह्मणि संयोगो योग इत्यभि धीयते।।[33]

जैसा कि योगवार्तिक में कहा गया है कि –

हेतुद्वयं तु चित्तस्य वासना च समीरणः।[34]

---

30 योग.सू.व्यास.भा.
31 पा.यो.सू. 33
32 समाधि पाठ 34
33 वि.पु. 6/7/31
34 यो.वा. 3/1

योग की साधना में चित्त के अंदर वृत्तिप्रवाह के केवल दो हेतु हैं। एक तो है वासना अर्थात् भावनामय संस्कार और दूसरा है प्राणप्रवाह। प्राण के अंदर वासना का बीज और संस्कार ग्रथित रहते हैं। प्राण के स्पन्दन से मन स्पन्दित होने पर वृत्तिप्रवाह रूप उत्ताल तरंग माला उठना आरम्भ करती है। इसलिए प्राण और मन के स्पन्दन का नाश करने की व्यवस्था योग की साधना में की जाती है। निरंतर नाड़ियों से होकर प्राणधारा जीव शरीर में प्रवाहित हो रही है और वही श्वास के रूप में स्थूलतः दिखाई देती है। यह श्वास ही जीव का जीवन है।

हठयोग प्रदीपका में कहा गया है कि –

पवनो लीयते यत्र मनस्तत्र विलीयते।[35]

प्राण वायु स्थिर होने पर मन स्थिर हो जाता है। और मन स्थिर होने पर प्राण स्थिर हो जाता है। इसीलिए योगियों के एक सम्प्रदाय ने प्राण का और दूसरे ने मन का निरोध करने की ओर विशेष ध्यान दिया है।

दुःसहा राम संसारविषवेविषूचिका
योगगाकडमन्त्रेण पावने नोपशाम्यति।[36]

योगवाशिष्ठ में महर्षि वशिष्ठ राम को अवलम्ब करके बता रहे हैं कि साधारणतः हमारा चित्त जब संसारमुखी (जैसा अधिकांश लोगों का) होता है, तब श्वास भी बाहर की ओर विचरण करता है। इस श्वास की गति की ओर योगियों ने ध्यान दिया है। जब श्वास हमारी बांयी अथवा दाहिनी नासिका से चलता है, तब संसार वासना स्पन्दित होती है। सब जीवों का श्वास प्रवाह इन्हीं दो नासपुटों से प्रवाहित होता है, अतएव संसार–वासना किसी तरह निवृत्त नहीं होती। इसी कारण

[35] हठ यो. प्रदी. 5
[36] यो.वा.–13

योगियों ने ऐसी चेष्टा की है कि श्वास बाहर की ओर गमनागमन न करे। बाहर की ओरगमन और आगमनकरने का पथ इडा और पिंगला नाड़ी हैं। साधारणतः अज्ञानी की ज्ञाननाडी सुषम्ना पथ बंद रहता है। योगी इसीलिए इडा और पिंगला नाड़ी द्वाराबंद करके सुषुम्ना मार्ग से प्राण को चलाने की चेष्टा करते हैं, अन्यथा मनुष्य के अंदर वास्तविक ज्ञान उदय होना संभव नहीं है। बृह्मज्ञान प्रवाहिका नाड़ी सुषुम्ना है, उसी में प्राण को चलाने से ब्रह्म का ज्ञान संभव है।[37] भारत की सुदीर्घ ऋषिपरंपरा और ज्ञात इतिहास के पृष्ठों में उल्लेखित राम, कृष्ण, शंकर, गौतम महावीर, ईसा, मूसा, मोहम्मद, दयानंद विवेकानंद श्री अरविन्द और वर्तमान सदी के मौलिक चिंतक और अभूतपूर्व दार्शनिक आचार्य रजनीश (ओशो) सभी ने मस्तिष्क की संकीर्णता से ऊपर उठकर उदार एवं गंभीर चिंतन का और समस्त विश्व के साथ आत्मभाव करने का निर्देश दिया है। सभी प्राणियों तथा परमात्मा के साथ तादात्म्य संस्थापित की विधि ही तो योग की सहज साधना है। इस साधना के प्रारंभिक सोपान यम–नियम संपूर्ण विश्व को एकीभाव में देखने का उपदेश देते हैं। जिसके परिपालन के विना मानव अपने वास्तविक लक्ष्य और सुख तथा शान्ति को प्राप्त नहीं कर सकता है।

3. योग और उपासना की विभिन्न पद्धतियाँ :

इतिहास की दृष्टि से यह निश्चय करना अत्यन्त कठिन है कि विश्व में योगविद्या का आविर्भाव कब और कहाँ से हुआ है? वेदों में योग का उल्लेख प्राप्त है, इसलिए योग निश्चय ही बहुत प्राचीन काल से चला आ रहा है। चित्त की वृत्तियों का निरोध और आत्मसंयम का व्यावहारिक अभ्यास करने की विधा का नाम योग है। योग कई हजार वर्षो से संसार में अपना कार्य कर रहा है। इसने विश्व के सभी धर्मो को

---

[37] यो.वा.–वही

अनुप्राणित किया और मनुष्यों को आत्मबल प्राप्त कराकर परमोन्नति प्राप्त करने की दिशा में अग्रसर किया।

ऋग्वेद में कहा गया है, कि ईश्वर एक है उसको ज्ञानी विभिन्न प्रकार से व्यक्त करते हैं—

एकं सद्‌विप्रा बहुधा वदन्ति।[38]

इस पृथ्वी पर विभिन्न स्थानों पर विभिन्न लोगों ने विभिन्न प्रकार से स्व' की खोज करने की कोशिशें की। इन्हीं प्रयोगात्मक विधियों के द्वारा अनेक लोग तत्व की खोज करने में समर्थ हुए। कालांतर में ये विधियाँ ही उपासना की विभिन्न पद्धतियों के नाम से प्रसिद्ध हुई।

सम्पूर्ण विश्व में हर जाति और संप्रदाय में चाहे वे आस्तिक हो अथवा नास्तिक सभी ने जीवन के उत्कर्ष और विकास के लिए मानवीय मस्तिष्क के चरम बिन्दु पर पहुँचकर आने वाली मानव जाति के सर्वांगीण विकास के लिए ईश्वर को केन्द्र मे रखकर जो विधि विधानों का निर्माण किया वे उस जाति, संस्कृति तथा संप्रदाय में उपासना की पद्धतियों के रूप मे प्रचलित हुई।

भारतीय परिप्रेक्ष्य में यदि हम वैदिक साहित्य का अनुशीलन करें तो पाएंगे कि वैदिक काल में समाज के अभिजात वर्ग के लिए संध्योपासना पद्धति का विधान किया गया। कालांतर में संध्योपासना ही योग की उपासना की विभिन्न पद्धतियों में रूपांतरित हो गयी।

---

[38] ऋ.वे. दयानंद भाष्य, पृ. 184

1) बुद्धियोग उपासना पद्धति–

ज्ञानयोग का बुद्धियोग पद्धति धर्म की स्पष्ट एवं सरल व्याख्या करती है, जो अन्ततोगत्वा बुद्धि को प्रेरणात्मक तीव्र संवेग के रूप में परिणत कर देती है। बुद्धियोग पद्धति का लक्ष्य अपने वास्तविक स्वरूप को समझने में पूर्ण सहयोग प्रदान करताहै। वास्तविक स्वरूप क्या है ? तथा वास्तविक संसार क्या है ? ईश्वर क्या है ? और देवी शक्ति या देव–तत्व क्या है ? ये सब इस पद्धति के दार्शनिक पहलू हैं। इसका अभ्यास करने वाले को यह इतना बुद्धिमान, नम्र और सावधान बनाती है, जिससे वह विपरीत परिस्थितियों में घबड़ाता नहीं है या दुविधापूर्ण स्थितियों में किंकर्तव्यविमूढ़ नहीं होता है। वेद तीन काण्डों में विभक्त हैं'– कर्मकाण्ड, उपासना काण्ड और ज्ञानकाण्ड। वेद के कर्मकाण्ड के अनुसार कर्म सुकौशल को योग कहते है।[39] उपासना काण्ड के अनुसार चित्तवृत्ति निरोध और ज्ञानकाण्ड के अनुसार जीवात्मा और परमात्मा के एकीकरण को योग कहते हैं।

भगवान् की सांनिध्य प्राप्ति के साधनों को उपासना कहते हैं। उपासना का प्राण भक्ति है और कलेवर योग है। शरीर में प्राण के न रहने से जैसे शरीर की कुछ भी उपयोगिता नहीं रहती, वैसे ही भगवद्भभक्तिविहीन योग केवल शारीरिक व्यायाम हो जाता है।

योग तत्ववेत्ताओं ने योगसाधना की चार स्वतंत्र पद्धतियों का उपदेश दिया है : और योगमार्ग से भगवान के राज्य में पहुंचने के आठ सोपान बताए हैं।

योग उपासना की मुख्य पद्धति –

इसके अंतर्गत मंत्रयोग हठयोग, लययोग और राजयोग पद्धतियाँ आती हैं।

---

[39] भगवद्गीता–5/7

(क) मंत्रयोग– इस योग पद्धति का सिद्धांत यह है कि यह संसार नाम–रूपात्मक है। नाम और रूप से जीवन अविद्या में फँसकर जकड़ा रहता है। मनुष्य जिस भूमि पर गिरता है, उसी के अवलम्बन से उठ सकता है। इस पद्धति के विशेषज्ञों ने इसको सोलह भागों में विभक्त किया है। जैसे– दिक्शुद्धि, स्थानशुद्धि, मन्त्रजप, स्तुति, न्यास इत्यादि हैं।

(ख) हठयोग–उपासना पद्धति–

इस पद्धति के अनुसार स्थूल शरीर और सूक्ष्म शरीर एक ही भाव में गुम्फित हैं और एक का प्रभाव दूसरे पर पड़ता है। स्थूल शरीर को अपने अधीन कर सूक्ष्म शरीर को अधीन करते हुए योग की प्राप्ति करने को हठयोग पद्धति कहते हैं।

लययोग–

लययोग का सिद्धांत यह है कि ब्रह्माण्ड की प्रतिकृति मानवपिण्ड है। ब्रह्म और ब्रह्मशक्ति का विलास जैसा ब्रह्माण्ड है, वैसा मानवपिण्ड भी है। ग्रह, नक्षत्र, चतुर्दश भुवन आदि के पीठ मानव पिण्ड में भी हैं। पञ्चकोशों का आवरण शिथिल होने पर पिण्ड जहाँ चाहे, उसी लोक में अपना संबंध स्थापन कर सकता है। इसी विज्ञान के अनुसार मनुष्य पिण्ड के आधार पद्म में कुलकुण्डलिनि नामक ब्रह्मशक्ति प्रसुप्त रहकर अविद्या के प्रभाव से सृष्टि क्रिया करती है। मनुष्य के शरीर में सप्तम चक्र मस्तक में स्थित सहस्रदल में जिस योग द्वारा कुलकुण्डलिनि शक्ति को ले जाकर ब्रह्मरूपी सदा शिव के साथ मिला दिया जाता है, उस शिव में शक्ति का लय कर आत्मवोध प्राप्त करने के साधन का नाम लययोग है।

राजयोग –

राजयोग अन्य तीन योगों की चरम सीमा है। इस पद्धति का सिद्धांत यह है कि मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार से संवलित अन्तः करण ही जीव के बन्धन का कारण और मुक्ति का भी कारण है। जैसे अशुद्ध मन जीव को नीचे गिराता है और शुद्ध मन ऊपर उठाता है, वैसे ही इन्द्रिय परायण बुद्धि जीव को बन्धन में जकड़ती है और ब्रह्मपरायण बुद्धि जीवन को मुक्ति की भूमि में पहुँचा देती है। अतः बुद्धि की सहायता से तत्वज्ञान लाभ करके अन्त में राजयोगी जीव और ब्रह्म के अभेद का कारण समझकर ज्ञान से अज्ञान का नाश करता हुआ जीवन और ब्रह्म की अद्वैतसिद्धि के द्वारा मुक्त हो जाता है। राजयोग साधन के सोलह अंग है।। राजयोग के ध्यान को ब्रह्मध्यान कहते हैं और राजयोग की समाधि निर्विकल्प समाधि कहलाती है, जिसका फल जीवनमुक्ति है। इन चार योग शैलियों के मूल में भगवद्भक्तियुक्त अष्टांग योग का साधनक्रम विद्यमान है। अष्टाडगयोग के आठों अडग ब्रह्मरूपी सर्वोच्च शिखर पर चढ़ने के लिए आठ सोपान हैं। इनका संक्षिप्त विज्ञान यह है बहिरिन्द्रियों पर आधिपत्य जमाने के साधनों को यम कहते हैं। अन्तरिन्द्रियों पर आधिपत्य जमाने के साधनों को नियम कहते हैं। स्थूल शरीर को योग के उपयोगी बनाने के साधनों को आसन कहते है। शरीरस्थ प्राण को योगोपयोगी बनाने के साधनों को प्राणायाम कहते हैं। यो चारों साधन बहिरड्ग के हैं। बहिर्मुख मन को एक स्थान में ठहराने के साधनों को धारणा कहते हैं। अन्तर्जगत में ठहरने का अभ्यास प्राप्त करते हुए अपने इष्टदेव, चाहे सगुणभावमय रूप हो, चाहे ज्योतिर्मय रूप हो, चाहे बिन्दुमय रूप हो, चाहे निर्गुण सच्चिदानन्दमय रूप हो, जिसका जैसा अधिकार हो, उसी इष्टदेव को केवल ध्येय बनाकर जगत् के भूल जाने को ध्यान कहते हैं। परमात्मा में अपने जीवभाव को मिला देने का नाम समाधि हैं। निर्विकल्प समाधि ही सब साधनों का अन्तिम लक्ष्य है।

4. योग से आत्मस्वरूप का बोध :

सभी शास्त्रों के अनुसार योग की एक विशिष्ट सार्वभौम सत्ता है। वह प्रथमतः आत्मसाक्षात्कार से प्रारम्भ होकर परमात्मसाक्षात्कार तक पहुँचती है। पातञ्जल योगदर्शन के अनुसार चित्त की सारी वृत्तियों को निरूद्ध कर यहाँ तक कि ऋतम्भरा प्रज्ञा को भी निरुद्ध करने पर जो निर्विकल्प– समाधि होती है, उसी का नाम आत्मसाक्षात्कार या आत्मबोध है। इसी का दूसरा नाम निर्बीज समाधि भी है, यही चिति शक्ति के नाम से भी जानी जाती है। चिति शक्ति का अपने स्वरूप में स्थित हो जाना ही योग से आत्मस्वरूप का बोध है।

पुरूषार्थ शून्यानां गुणानां प्रतिप्रसवः कैवल्यं स्वरूप
प्रतिष्ठा वा चितिशक्तेरिति।।[40]

दुर्गासप्तशती में भी पराशक्ति का नाम चिति शक्ति है। यह भगवती चितिशक्ति नित्य ही सर्वत्र संसार में व्याप्त है। यही संसार को उत्पन्न, पालित, संचालित एवं संहृत करती रहती है। यह चिति शक्ति आत्मबोध प्राप्त करने के पश्चात् साधक का कल्याण करती है।

चितिरूपेण या कृत्स्नमेतद्व्यात्य स्थितः जगत,[41]
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः।

भगवद्गीता में योग क्या है ? इसके ज्ञान के विषय में केवल तीव्र उत्कण्ठा मात्र होने परभी साधक के लिए शब्द –ब्रह्म से ऊपर उठ जाने की बात कही गयी है।

यतः प्रवृत्ति र्भूतानाम् येन सर्वमिदम् तम्
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः।[42]

---

[40] पा.यो.सू. 4/34
[41] दु. स. 21.

गीता में शब्द ब्रह्म से ऊपर उठ जाने की बात कही गयी है– यहाँ शब्द ब्रह्म का तात्पर्य समस्त वेदराशि और वाचिक शब्दों के द्वारा प्रतिपाद्य लौकिक साहित्य भी है। योग शब्द वैसे युज् समाधौ 'युज् संयमने, तथा 'युजिर योगे' इन तीन धातुओं से बनता है। तथापि इसके सार्वभौम होने से इसमें आत्मा –परमात्मा का योग, सम्पूर्ण विश्व के प्राणि–पदार्थो का एकत्र संयोग, पूर्ण ब्रह्म परमात्मा की प्राप्ति एवं विज्ञानघन ज्योतिःस्वरूप विशुद्ध आत्मा के पूर्ण साक्षात्कार आदि अर्थ संदर्भो में यह विशेष रूप से प्रयुक्त होता है।

जिज्ञासुरपि योगस्य शब्दब्रह्मातिवर्तते।[43]

भारत में योग की विधियों के द्वारा आत्मबोध करने के ऊपर अपार सामग्री है, जिनमें से योग चूडामणि, कुलकुण्डलिनी, योगशिखोपनिषद, अथर्वशीर्षोपनिषद् आदि में योग को आत्मबोध कराने की सबसे श्रेष्ठ, सहज, प्राकृतिक व अद्वितीय विधि बताया गया है।

महर्षि पतञ्जलि ने इस योग की समाधि की विधि को आत्मसाक्षात्कार करने के लिए धर्म अमृतधारा को प्रवाहित करने वाली धर्ममहामेघ की संज्ञा दी है।

प्रसंख्यानेऽव्यकुसीदस्य सर्वथा विवेकरव्यातेर्धर्ममेघः समाधिः।[44]

इसी सदर्भ में अन्यत्र भी कहा गया है कि योगाभ्यास की प्राप्ति के द्वारा यह समाधि हजारों धर्मरूपी धाराएँ प्रवाहित करती है। इसीलिए योगाचार्यो ने इस विधि को धर्म मेघ कहा है।

ततोऽभ्यासपाटवात् सहस्रशः सदामृतधारा वर्षति ततो

---

42 श्री म.भ.गी. 18/46
43 भ.व.गी. 6/44
44 योग.द. 4/29

योगवित्तमाः समाधिं धर्ममेध प्राहुः।[45]

योगसाधना सभी प्रकार के साधकों के लिए कल्याण का साधन है। इसलिए मनीषियों ने विचार की सूक्ष्मतिसूक्ष्म कोटियों की परम्परा को पार करते हुए आत्मदर्शन की सर्वश्रेष्ठता प्रतिपादित की है।

अनादाविह संसारे..... धर्मामृतधारा सहस्रशः।[46]

याज्ञवल्क्य स्मृति में महर्षि ज्ञानवल्क्य ने कहा है कि–

अयं तु परमो धर्मो यद्योगेनात्मदर्शनम्।[47]

तत्ववेत्ताओं, ज्ञानियों, योगियों, विद्वानों और टीकाकारों ने आत्मदर्शन शब्द का अर्थ व्यापकरूप से परमात्मदर्शन किया है। शब्दांतर भेद से कुछ भी कहा गया हो परन्तु शास्त्रों के वचन एवं योगियों के आत्मनुभव को दृष्टि में रखते हुए निष्कर्षतः शोधार्थी के स्वानुभव से यह कहा जा सकता है कि योग से स्व' का बोध सर्वप्रथम होता है।

आत्मा को देखना चाहिए सुनना चाहिए, प्रश्न पूछने चाहिए और उसका मनन करना चाहिए। इत्यादि विश्लेषण उपनिषदों में किए गए है।

आत्मा वारे दृष्टव्यः।[48]

तीव्र योगसाधना में केवल परमात्मा ही दृष्टिगोचर होते हैं, यह संसार तिरोहित हो जाता है।

तमेतं ब्राह्मणा विविदिषन्ति। [49]

---

[45] पे. उपानि. अ. 3
[46] पञ्चदशी. 1/59–60
[47] य.व.स्मृ. 1/17
[48] वृहद आ.उप. 4/4

यह योग का वास्तविक चमत्कार है। जो इस बात को जान लेता है, वह संसार का सर्वाधिक बुद्धिमान एवं कृतकृत्य व्यक्ति माना गया है।

एतद् बुद्ध्वा बुद्धिमान् स्यात् कृतकृत्यश्च भारत।[50]

श्रीभगवद्गीता में योगीराज **श्रीकृष्ण** ने कहा है कि –

समाधावचला बृद्धिस्तदा योगमवात्स्यसि।
असंयतात्मना योगो दुष्प्राप इति में मति।[51]

समस्त शास्त्रों के ज्ञान से तथा शुद्ध बुद्धि द्वारा चिन्तनपूर्वक विप्रतिपन्न बुद्धि जब समाधि–अवस्था में व्यवसायात्मिका रूप में एक परमात्मा में अवस्थित हो जायेगी तब पूर्णयोग की प्राप्ति होती है। इस कथन से यह स्पष्ट होता है कि योग का फल समग्ररूपेण परमात्मा की प्राप्ति है। किन्तु यह योग असावधान, चंचलचित्त, प्रमाद, अहंकार आदि दोषों से ग्रस्त भोगलिप्सु व्यक्तियों के लिए सर्वथा दुष्प्राव्य है।

अन्यत्र भी कहा गया है कि –

अनेकजन्मसंसिद्धस्ततो याति परां गतिम्।[52]

इसी को अनेक जन्मों के द्वारा सिद्धिप्राप्त जीवनमुक्त योगी के लिए परमोच्च पद– प्राप्ति की बात कही गयी है। प्रयत्नशील योगाभ्यासी व्यक्ति को समस्त शास्त्रों के ज्ञान द्वारा युक्त होकर परमात्म या आत्मतत्व की प्राप्ति के लिए पूर्ण प्रयत्न करना चाहिए।

यद्यपि मनुष्य चराचर के सभी प्राणियों मे सर्वाधिक बुद्धिमान् है, वह परिश्रमपूर्वक अपने पूर्वजों योगसिद्ध ऋषि–महर्षियों द्वारा निर्दिष्ट तथा योगसाधनाओं

---

49 वृ.आ.उप. 5/3
50 श्री.म.भगी. 15/20
51 भ.गी. 2/53
52 भ.गी. 6/45

से प्राप्त भगवत् तत्व और ज्ञान–तत्व को अच्छी तरह जानकर उनकी साधना–विधि आदि को हृदयंगम कर लेता है, तथापि वह वासना, तृष्णा आदि पर पूर्ण विजय प्राप्त नहीं कर पाता। काम, क्रोध, लोभ, मोह, शक्ति, अभिमान, दम्भ, छल, असत्य, ईर्ष्या, उद्वेग, हर्ष–विषाद एवं रसलोलुपता की दृष्टि आदि हजारों दोषों को जीतने में समर्थ नहीं हो पाता। वह भजन कीर्तन आदि की महत्ता को जानकर भी उसमें नहीं लग पाता। इस प्रकार अच्छी वस्तुओं को जानकर भी उनका आचरण करने एवं बुरी बस्तुओं के परित्याग में योगाभ्यास के बिना असमर्थ रहता है। इसलिए योगसाधक शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध आदि से सर्वथा दूर रहता है। उसकी इन्द्रियाँ संयत हो जाती हैं। इससे वह दीर्घकाल तक योगसाधन एवं भगवद्भजन में रत रह सकता है। काम, क्रोध, लोभ एवं मोह आदि उसके पास भी नहीं आते। आत्मस्वरूप के बोध से युक्त व्यक्ति शील, विनय, करूणा, समता मुदिता, सद्बुद्धि, शान्ति तथा सम्यक् ज्ञान उसके बाहर–भीतर सदैव व्याप्त रहते हैं। इस प्रकार आत्मवित् प्रायः सभी दोषों पर विजय प्राप्त करता हुआ सम्पूर्ण श्रेष्ठ सद्गुणों का आकर बन जाता है।

इस प्रकार के योग–साधक की दृष्टि में सूक्ष्मता आ जाती है। जिससे उसे भूत–भविष्य का ज्ञान होने लगता है। ऐसी स्थिति में सिद्ध, संत, देवता, मुनि आदि भी उसकी सहायता करने लग जाते हैं। उसे परमात्व तत्व का सम्यक ज्ञान हो जाता है।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि दुनियाँ के किसी भी भाग में प्रचलित उपासना की विभिन्न पद्धतियाँ मूल रूप से योगदर्शन में वर्णित हैं। वर्तमान में योगोक्त उपासना पद्धति पर अनुशीलन की आवश्यकता है, जिससे ये पद्धतियाँ जनसामान्य तक पहुँच सके और अधिकांश जन इनसे लाभान्वित हो सकें।